कहानी की कहानी

कहानी की कहानी

कथा-कहानियों की आदि जननी
'वृहत्कथा' की कहानी

लेखक
सन्तराम वत्स्य

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क : दिल्ली

- डी. पी. आई. पंजाब के सरकुलर नं० ३/१५-५८-की—२६४७ दि. २३-१-५९ के अनुसार स्कूल पुस्तकालयों और पुरस्कारों के लिए स्वीकृत।
- सेण्ट्रल लायब्रेरी कमेटी चंडीगढ़ के सरकुलर नं० पी. आर-लाय-५८/६/३६३ दि. २२-११-५८ के अनुसार पंचायत-पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।
- टेरीटोरियल कौंसिल हिमाचल प्रदेश द्वारा अगस्त सन् १९६० में प्रकाशित सूची के अनुसार प्राइमरी स्कूल पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

द्वितीय संस्करण
दिसम्बर, १९६१

मूल्य
६५ नये पैसे

चित्रकार
आर्यन

मुद्रक
युगान्तर प्रेस
डफ़रिन पुल, दिल्ली

दो शब्द

'वृहत्कथा' कथा-साहित्य की जननी है। इस महिमाशालिनी 'वृहत्कथा' की रचना कैसे हुई, यह रोचक वृत्तांत सोमदेव भट्ट ने 'कथा-सरित्सागर' में लिखा है। 'कथा-सरित्सागर' की रचना सोमदेव भट्ट ने 'वृहत्कथा मंजरी' के आधार पर की थी और स्वयं 'वृहत्कथा मंजरी' की रचना क्षेमेन्द्र ने 'वृहत्कथा' के आधार पर की।

संस्कृत-साहित्य के बहुत-से कथानकों का आधार यह वृहत्कथा ही है। महाकवि भास, श्रीहर्ष, भवभूति, विशाखदत्त आदि की कई रचनाओं का आधार यह वृहत्कथा ही है। वैताल पंच-विंशति, पंचतंत्र और हितोपदेश भी इसी पर आधारित हैं।

व्यास और वाल्मीकि की भांति गुणाढ्य भी भारतीय साहित्य-कारों के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं।

इन्हीं गुणाढ्य के जीवन का प्रसंग इस छोटी-सी पुस्तिका में दिया जा रहा है।

—लेखक

कहानी की कहानी

हिमालय में कैलास नामक एक बहुत ही ऊँची चोटी है। इसी पर शिव-पार्वती रहते हैं। यही कारण है कि शिवजी को कैलासपति भी कहते हैं। शिवजी का निवास होने के कारण ही, कैलास की गिनती हमारे परम पवित्र

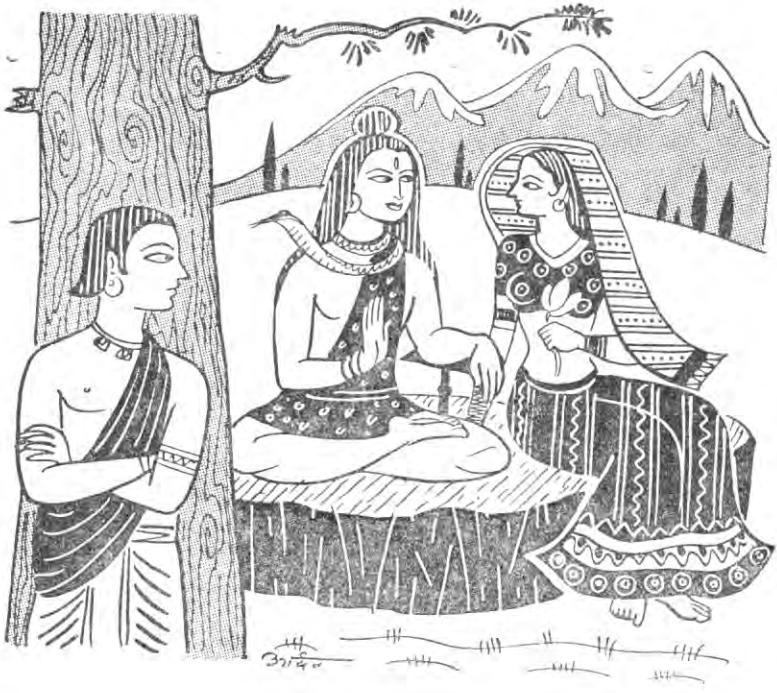

तीर्थों में की जाती है। हर साल हज़ारों यात्री अपने प्राणों की भी परवाह न करके वहाँ कैलास के दर्शनों के लिए जाते हैं।

इसी कैलास पर्वत पर बैठे हुए शिवजी ने एक दिन पार्वती से कहा—प्रिये, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। कहो, तुम्हारी कौन-सी मनोकामना पूरी करूँ? पार्वतीजी बोलीं—हे नाथ, मेरी इच्छा ऐसी कथा-कहानी सुनने की है, जो न तो इससे पहले किसी ने सुनी हो और न कोई दूसरा उसे जानता ही हो।

तब शिवजी ने कहा—तुम्हें तो तीनों कालों का ज्ञान है। तुमसे कौन-सी बात छिपी हुई है। पर पार्वतीजी यों ही कब मानने वाली थीं। वह भी अपनी बात पर अड़ी रहीं। अन्त में शिवजी ज़रा मुस्करा कर बोले—अच्छा, लो नहीं मानती हो तो सुनो—दक्ष प्रजापति की बहुत-सी कन्याएँ थीं, उनमें से तुम्हारा विवाह उन्होंने मेरे साथ कर दिया। एक बार दक्ष प्रजापति एक बड़ा यज्ञ करने लगे। उन्होंने मुझे छोड़ कर बाकी सब जमाइयों को बुलावा भेजा। पर तुम बिना बुलाए ही उस यज्ञ में चली गईं। जब तुम ने अपने पिताजी से पूछा कि मेरे पति को क्यों नहीं बुलाया, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह अमंगल वेश-धारी है, इस लिये यज्ञ में बुलाने के योग्य नहीं है। तुम अपने इस अपमान को सहन न कर सकीं और अग्नि में कूद पड़ीं। जब तुम्हारे जल-मरने की बात मुझे मालूम हुई तो मैंने यज्ञ को विध्वंस कर दिया। फिर तुम

हिमालय के यहाँ जन्मीं। आगे की बात तो तुम जानती ही हो। तुम मेरे लिए तपस्या करने लगीं। उधर तारकासुर देवताओं को तंग करने लगा था। सारे देवता मिलकर मेरे पास आये और प्रार्थना करने लगे कि तारकासुर को मारने के लिए, आपके द्वारा उत्पन्न पुत्र ही समर्थ हो सकता है। उन्होंने कामदेव को भी सिखा-पढ़ा कर मेरे पास भेजा। उसने छिप कर मुझ पर काम-बाण चलाने शुरू किये। मैंने उसे अपने तीसरे नेत्र द्वारा भस्म कर डाला। तुम्हारी तपस्या दिनों-दिन कठोर होती गई और आखिर तुमने मुझे प्राप्त कर ही लिया। फिर क्या था। तुम्हारे साथ मेरा विवाह हो गया। इतनी बात कहकर शिवजी चुप हो गए।

यह छोटी-सी आपबीती कथा सुनकर पार्वती जी रूठ गईं। शिवजी का यह मज़ाक उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने तो कहा था कि कोई ऐसी कथा सुनाइये जो न तो पहले किसी ने सुनी हो और न उसे कोई जानता ही हो। इस कथा को तो सभी जानते थे और यह तो उनकी अपनी ही कथा थी।

शिवजी ने देखा कि यों टालने से काम नहीं चलेगा; तब उन्होंने वायदा किया कि जैसी कथा तुम कहती हो, वैसी ही कथा तुम्हें सुनाता हूँ। यह कथा न तो देवताओं की है और न मनुष्यों की। क्योंकि देवताओं के जीवन में सुख ही सुख होता है और मनुष्यों की कथा में दुःख-दर्द भरा रहता है। इस लिये मैं तुम्हें विद्याधरों की बहुत ही

रसीली कथा सुनाता हूँ। विद्याधरों के जीवन में दोनों—देवता और मनुष्यों—जैसी सुख-दुख की और होनी-अनहोनी बातें होती हैं।

कथा शुरू होने से पहले पार्वतीजी ने सोचा कि बीच में कोई आ गया तो सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाएगा, इस लिये उन्होंने नंदी से कहा कि तुम दरवाज़े पर बैठो और जब तक कथा पूरी न हो जाए किसी को भीतर मत आने दो। नंदी दरवाज़े पर पहरा देने लगा और शिवजी कथा कहने लगे।

इतने में शिवजी का पुष्पदन्त नामक गण आया। नंदी ने उसे दरवाज़े पर रोक लिया। पुष्पदन्त ने सोचा मैं तो सदा बेरोक-टोक भीतर जाता-आता हूँ। मुझे तो कभी किसी ने नहीं रोका। फिर आज क्या बात है! हो न हो कोई बड़ी गुप्त बातचीत हो रही होगी। तो क्यों न अपने योगबल से भीतर जाकर उस गुप्त बात को सुनूँ और वह योगबल से भीतर चला गया। उसने शिवजी द्वारा कही हुई विद्याधरों की सारी कथा छिपे-छिपे सुन ली।

कथा समाप्त हुई तो पुष्पदन्त चुपचाप घर लौट आया। वहाँ जाकर उसने वह सारी कथा अपनी पत्नी जया को सुना दी।

जया पार्वतीजी की सेविका थी। उसने सोचा, ऐसी रोचक कथा मैं अपनी मालकिन को सुनाऊँगी, तो वह मुझ पर अवश्य प्रसन्न होंगी। दूसरे दिन उसने वह सारी कथा

ज्यों की त्यों पार्वतीजी को कह सुनाई।

पार्वतीजी को शिवजी पर बड़ा क्रोध आया। वह झट उनके पास गईं और बोलीं कि आप तो मुझ से भी झूठ बोलते हैं। आपने तो कहा था कि यह कथा अभी तक किसी ने नहीं सुनी है और न मेरे सिवा इसे कोई जानता है। शिवजी बीच में बोल पड़े—हाँ, ठीक ही तो कहा था। तो क्या तुम्हारे सिवा और भी कोई इसे जानता है ?

जानता क्यों नहीं है। मेरी दासी जया तक उसे जानती है, औरों की तो बात छोड़िए।

शंकरजी गम्भीर हो उठे और ध्यान लगाकर सोचने लगे—उन्हें यह बात मालूम हो गई कि पुष्पदन्त ने छिप कर वह सारी कथा सुन ली है और घर जाकर जया को सुना दी है। उन्होंने सारी बात पार्वतीजी को बताई। पुष्पदन्त के ऐसे व्यवहार पर उन्हें बहुत क्रोध आया। तुरंत पुष्पदन्त को बुला भेजा और बहुत डांटा-फटकारा। फिर भी उनका क्रोध शान्त न हुआ। अन्त में उन्होंने पुष्पदन्त को शाप दिया कि तुझे मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ मृत्यु-लोक के सारे दुःखों को सहना पड़ेगा।

पुष्पदन्त का भाई माल्यवान भी शिवजी का गण था। उसने पार्वतीजी से प्रार्थना की कि पुष्पदन्त के अपराध को क्षमा कर दें। पर पार्वतीजी तो क्रोध से आग-बबूला हो रही थीं। उन्होंने माल्यवान को भी वही शाप दे दिया। पुष्पदन्त

की पत्नी जया को जब दोनों भाइयों को शाप दिये जाने की बात मालूम हुई तो वह दौड़ी-दौड़ी पार्वतीजी के पास आई और उनके चरणों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगी। उसने अपने आँसुओं से पार्वतीजी के चरणों को धो डाला। अब तक पार्वतीजी का क्रोध कुछ-कुछ शान्त हो गया था। जया के गिड़गिड़ाने से उनका दिल पसीज गया और उन्होंने कहा—जये ! जो शाप मैंने दिया है, वह तो अब किसी प्रकार भी टल नहीं सकता। हाँ, मैं उसकी अवधि कम कर

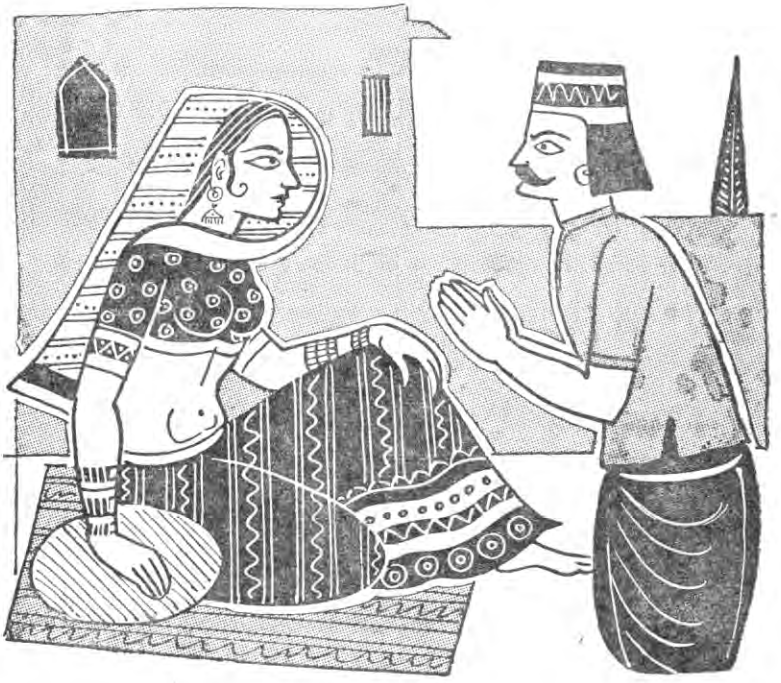

देती हूँ। मेरी बात ज़रा ध्यान से सुनो :

धनपति कुबेर के शाप से सुप्रतीक नामक यक्ष विन्ध्यारण्य में, पिशाच योनि में रहता है। पिशाच योनि का उस का नाम काणभूति है। पुष्पदन्त जब काणभूति को देखेगा तो उसे पहले जन्म की सारी बातें याद आ जाएँगी। फिर जब पुष्पदन्त शिवजी से सुनी हुई सारी कथाओं को काणभूति को सुना देगा तो उसकी मनुष्य देह छूट जायेगी। इसी तरह जब काणभूति पुष्पदन्त से सुनी हुई उन कथाओं को माल्यवान को सुना देगा तो उसका शाप भी मिट जायेगा। और फिर जब माल्यवान उन कथाओं का लोगों में प्रचार कर देगा तो उसका शाप भी मिट जाएगा।

भगवती पार्वती का शाप बेकार कैसे जाता। कौसाम्बी नगरी में सोमदत्त नाम का एक ब्राह्मण था। पुष्पदन्त ने इसके घर जन्म लिया। उसका नाम वररुचि पड़ा। वररुचि की किसी बात को याद रखने की शक्ति बड़े कमाल की थी। जो बात वह एक बार सुन लेता, वही उसे याद हो जाती। सरस्वती जैसे उसकी जीभ पर आ बैठी हो। वह एक राजा का मंत्री बना। पर जब उस राजा का वंश-नाश हो गया तो वररुचि के मन को बड़ी ठेस लगी। उसका मन इस दुनिया से उदास हो गया। वह घर-बार छोड़कर विन्ध्यारण्य में तप करने चला गया।

उसी विंध्यारण्य में कुबेर से शाप पाया हुआ, सुप्रतीक नामक यक्ष, पिशाच योनि में रहता था। पिशाच योनि का

उसका नाम काणभूति था।

काणभूति को देखते ही वररुचि को अपने पहले जन्म की, जब वह शिवजी का गण था, सब बातें याद आ गईं। देवी पार्वती ने यह बात उसे बता ही रखी थी।

वररुचि ने शिवजी से सुनी सात लाख श्लोकों में, सात विद्याधरों की कथा काणभूति को कह सुनाई। और यह बता दिया कि आप अभी कुछ दिन और यहीं पर रहें। जब माल्यवान नामक शिवजी का गण, जो कि मेरा पूर्व जन्म का भाई है, यहाँ आएगा तो ये सारी कथाएँ उसे सुना देना। तब आपके शाप का अन्त हो जाएगा और आपकी यह देह छूट जाएगी।

यह कहकर वररुचि बद्रिकाश्रम की ओर चल पड़ा। देवी पार्वती का ध्यान करते ही उसका मनुष्य-शरीर छूट गया और वह फिर से शिवजी का गण बना।

माल्यवान पार्वती के शाप के कारण, सुप्रतीक नगर में जन्मा। अब उसका नाम गुणाढ्य पड़ा।

इसके जन्म की कथा भी अनोखी है। सोमदत्त नामक ब्राह्मण की कुमारी कन्या श्रुतार्था से इसका जन्म हुआ।

यह अभी बच्चा ही था कि माँ मर गई। बालक गुणाढ्य अनाथ हो गया।

गुणाढ्य की पढ़ने-लिखने में खूब रुचि थी। वह विद्या सीखने के लिए दक्षिण की ओर चला गया। और थोड़े ही समय में पढ़-लिखकर अच्छा-खासा पंडित बन गया।

उसकी गिनती बड़े-बड़े विद्वानों में होने लगी। उसने खूब नाम कमाया। उसके कई चेले बन गए। इनमें दो खास थे। एक तो गुणिदेव और दूसरा नंदिदेव। इन दोनों को साथ लेकर गुणाढ्य सुप्रतीक नगर में, जो कि उसकी जन्मभूमि थी, वापस लौट आया।

यहाँ के राजा सातवाहन का राज अब तक दूर-दूर तक फैल चुका था। उन्होंने सम्राट् की पदवी प्राप्त कर ली थी। शर्व वर्मा उनके प्रधान मंत्री थे। गुणाढ्य की पंडिताई

और बड़ाई की बातें राजा को पहले ही मालूम हो चुकी थीं। राजा ने गुणाढ्य का खूब आदर-सत्कार किया और अपना मंत्री बना लिया।

वैसे तो सम्राट् सातवाहन बड़े बहादुर और प्रतापी थे। पर उनमें एक बात की कमी थी। वह यह कि कुछ मामूली पढ़े-लिखे थे। नहीं के बराबर।

महाराज की एक महारानी बहुत लिखी-पढ़ी थी। उसे अपने खूब पढ़े-लिखे होने का कुछ अभिमान भी था। महाराज को महारानी से पंडिताई में मात खानी पड़ती थी। और यह बात उनको बहुत चुभती थी।

वसन्त ऋतु के एक दिन की बात है: महाराज अपनी सभी रानियों समेत अपने खास बाग में सैर-सपाटे के मजे ले रहे थे। बाग में तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूल खिले थे। भीनी-भीनी सुगन्ध से रची-बसी हल्की-हल्की हवा बह रही थी। रस के लोभी भौंरे एक फूल से दूसरे पर और दूसरे से तीसरे पर पागल-से बने मंडरा रहे थे। बाग के बीचों-बीच एक बहुत ही बढ़िया तालाब था। इस तालाब का पानी बहुत ही निर्मल और सुगन्धि वाला था। महाराज जब घूमते-फिरते तालाब के पास पहुँचे तो मन में आया कि जल-विहार करें। वे अपनी रानियों समेत जल-विहार के लिए तालाब में उतर पड़े। अब तो तरह-तरह के किलोल होने लगे। एक-दूसरे पर पानी के छींटे दिये जाने लगे। जब उस बहुत पढ़ी-लिखी महारानी को महाराज ने ज़ोर से पानी के छींटे

दिए तो उसने बचाव के लिए अपनी आँखें मूँद लीं। पर महाराज तब भी छींटाकशी करते ही रहे। जब वह तंग आ गई तो उसने ज़रा कड़वे लहजे में कहा :

"मोदकै देव ! परिताड़य" (अर्थात् महाराज मुझे पानी के छींटे मत दीजिये) इस संस्कृत वाक्य के दो अर्थ निकलते हैं। दूसरा अर्थ निकलता है, "महाराज मुझे लड्डुओं से मारिये।"

महाराज सातवाहन ने पहला अर्थ न समझकर दूसरा अर्थ समझ लिया। पास खड़ी दासी को महाराज ने आज्ञा दी कि जाकर लड्डू लाओ।

उस पढ़ी लिखी महारानी को महाराज की इस नासमझी पर हँसी आ गई। उसने कहा—"महाराज ! भला जल-विहार के समय लड्डुओं का क्या काम। मैंने तो कहा था कि मुझे पानी के छींटे न मारें।"

दूसरी रानियाँ भी इस बात को सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

पर महाराज सातवाहन को, उनकी मूर्खता पर रानियों का इस तरह हँसना बहुत ही बुरा लगा। वे अपनी इस बे-इज्जती से तिलमिला उठे। वे उसी समय तालाब से बाहर निकल आए। चेहरे पर गंभीरता छा गई। उन्होंने झट से अपने गहने-कपड़े पहने और रनिवास में जाकर पलंग पर लेट रहे। दरबारियों से बोलना-चालना और मिलना-जुलना बन्द कर दिया। यहाँ तक कि भोजन भी छोड़ दिया।

महाराज ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि या यो जान दे दूँगा या फिर अपने आपको ऐसा योग्य बनाऊँगा कि विद्वानों के बीच बैठ सकूँ।

रनिवास में हाहाकार मच गया। जब प्रधान मन्त्री शर्व वर्मा को पता लगा तो वह दौड़ा-दौड़ा महाराज के पास गया। उसे मालूम हो गया था कि बात क्या है ?

वह अपने साथ गुणाढ्य को भी ले गया। शर्व वर्मा ने यों कहना शुरू किया—

महाराज, आपने एक दिन मुझसे पूछा था कि क्या मैं

विद्वान् बन सकता हूँ। यही सोचते-सोचते मुझे नींद आ गई। मैंने रात को सपना देखा कि आसमान से एक सफेद कमल गिरा। थोड़ी देर बाद उसे एक राजकुमार ने उठा लिया। यह कमल जब धरती पर गिरा था तो अधखिला ही था। ज्योंही राजकुमार ने उठाया तो पूरा खिल गया। फिर उस कमल में से सफेद कपड़े पहने एक कन्या निकली। वह कन्या महाराज के मुख में चली गई। इतने में मेरी नींद भी खुल गई।

जगने पर देर तक मैं इस सपने के बारे में सोचता रहा। मेरी समझ में तो इसका यही मतलब है कि महाराज पर सरस्वती माता जरूर कृपा करेंगी।

यह सुनकर महाराज को कुछ धीरज बँधा। उन्होंने गुणाढ्य से पूछा—"पंडित जी, अगर मन लगाकर पढ़ा जाये तो विद्वान् बनने में कितने दिन लगेंगे ?"

गुणाढ्य ने उत्तर दिया—"महाराज, सब शास्त्रों को समझने की कुँजी है व्याकरण। पूरी तरह व्याकरण को पढ़ने में बारह साल लगते हैं। पर मैं आपको छः साल में उसे पढ़ा सकता हूँ।"

गुणाढ्य की बात सुनकर प्रधान-मन्त्री शर्व वर्मा ने कहा—"यह छः साल का समय बहुत लम्बा है। महाराज इतनी मेहनत नहीं कर सकते। इन्हें तो राज-काज से ही फुर्सत नहीं मिलती है। मैं छः महीनों में ही महाराज को पंडित बना सकता हूँ।"

गुणाढ्य ने जो काम छः साल में करने को कहा, उसी

को शर्व वर्मा ने छः महीनों में कर डालने का वायदा किया। इससे गुणाढ्य के मन को बहुत चोट लगी।

गुणाढ्य ने इसे अपने लिए चुनौती समझा। उसे इस बात पर जोश आ गया। और जोश में होश कायम रहते नहीं। सो वह बोल उठा—"हमारे समाज में तीन भाषाएँ बोली जाती हैं। एक संस्कृत, दूसरी प्राकृत और तीसरी ग्रामीण। अगर आप महाराज को छः मास में पढ़ा दें तो मैं ये तीनों भाषाएँ बोलना छोड़ दूँगा।"

गुणाढ्य की बात सुनकर शर्व वर्मा भी जोश में आ गया। उसने भी प्रतिज्ञा कर डाली कि अगर छः महीनों में महाराज को पंडित न बना दूँ तो बारह साल तक आपकी खड़ाऊँ सिर पर उठाए रखूँगा।

बात खतम हुई। शर्व वर्मा अपने घर लौट आया। वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की तैयारी में लग पड़ा।

उसने व्याकरण की एक नई पोथी तैयार कर डाली। यह पोथी व्याकरण की पहली पोथियों से छोटी थी और पढ़ने-समझने में आसान। इस पुस्तक की सहायता से उन्होंने राजा सातवाहन को व्याकरण पढ़ाना शुरू किया। और कमाल यह कि गुणाढ्य ने जिस काम के लिए छः वर्ष का समय माँगा था, वही काम शर्व वर्मा ने छः माह में कर दिखाया। महाराज सातवाहन छः माह की पढ़ाई के बाद अच्छे-खासे पंडित बन गए।

गुणाढ्य बाज़ी हार गया। अब उसने अपने वायदे को

पूरा करने का इरादा किया। उसने मौन धारण कर लिया और सुप्रतिष्ठानपुर को छोड़ दिया। घूमता-फिरता वह विन्ध्य पर्वत की तराई में पहुँचा। यहाँ पिशाच जाति के लोग रहते थे। इनकी भाषा और रहन-सहन अलग तरह का था। गुणाढ्य को एक बात सूझी कि क्यों न मैं पिशाच-भाषा सीखूँ।

उसने संस्कृत, प्राकृत और ग्रामीण भाषा न बोलने की ही तो प्रतिज्ञा की थी। इस तरह पिशाच-भाषा सीखकर प्रतिज्ञा को निभाते हुये भी वह पिशाच भाषा में बोल सकता है। प्रतिज्ञा भी पूरी हो जाती थी और मौन रहने की भी जरूरत नहीं थी।

वह पिशाचों में रहने लगा और उनके साथ हिल-मिल गया। वह पढ़ा-लिखा तो था ही, अक़्ल भी खूब तेज़ थी। सो जल्दी ही पिशाच-भाषा सीख ली।

एक दिन पिशाचों के साथ घूमते-फिरते काणभूति से उसकी भेंट हो गई। गुणाढ्य ने उसे अपना नाम-धाम बताया। काणभूति तो उसी का इन्तजार कर रहा था। वररुचि ने पूर्वजन्म की सारी कहानी उसे पहले ही सुना रखी थी। काणभूति ने गुणाढ्य को पूर्वजन्म की सारी घटनाएँ सुनाईं।

वररुचि ने सात लाख श्लोकों की सात विद्याधरों की कथाएँ भी उसे पिशाच-भाषा में सुनाईं। ज्यों ही कथाएँ

पूरी हुई, काणभूति का शरीर छूट गया और मुक्ति मिल गई।

पार्वती ने माल्यवान गुणाढ्य को शाप देने के बाद कहा था कि तू इन कथाओं का प्रचार करेगा तो तेरा शाप भी छुट जायेगा। यह विचार कर—गुणाढ्य ने काणभूतिसे सुनी हुई कथाओं को पिशाच भाषा में लिखना शुरू किया। इन कथाओं का एक बड़ा पोथा बन गया। गुणाढ्य ने इन

कथाओं को स्याही से न लिखकर अपने खून से लिखा। इस का कारण यह था कि कहीं विद्याधर लोग इस पोथे को चुरा न लें। खून से लिखा होने के कारण वे उसे अपवित्र समझकर नहीं चुराते।

गुणाढ्य ने इसका नाम रखा, वृहत्कथा। अब इन कथाओं का प्रचार करना था। सो कैसे किया जाए, यह चिन्ता दिन-रात गुणाढ्य को सताने लगी। और यह भेंट किसे किया जाए, एक चिन्ता यह भी थी।

गुणाढ्य के दोनों चेले—गुणिदेव और नंदिदेव—उसके साथ ही थे। इस घोर विपत्ति में भी उन्होंने अपने गुरु को नहीं छोड़ा था। वे खूब मन लगाकर गुरु की सेवा करते थे।

गुणाढ्य ने निश्चय किया कि महाराज सातवाहन को ही भेंट किया जाए। इससे कथाओं के प्रचार में भी मदद मिलेगी। उसने अपने दोनों चेलों—गुणिदेव और नंदिदेव—को 'वृहत्कथा' की भारी-भरकम पोथी देकर महाराज सातवाहन के पास भेजा। वे कई दिनों की यात्रा के बाद सुप्रतिष्ठानपुर पहुँचे। द्वारपाल ने राज-सभा में बैठे महाराज सातवाहन को सूचना दी—"महाराज! दो पंडित द्वार पर खड़े हैं। वे अपने साथ एक बड़ी पोथी लाए हैं। उसे महाराज को भेंट करना चाहते हैं और महाराज के दर्शन भी करना चाहते हैं।"

महाराज ने झट आदर के साथ उन्हें सभा में लाने की आज्ञा दी।

गुणिदेव और नंदिदेव दोनों का पहनावा पिशाचों जैसा था। ज्यों ही वे सभा में पहुँचे कि पंडितों की टोली उनके पहनावे को देखकर आपस में उनकी खिल्ली उड़ाने लगी। महाराज सातवाहन के मन में भी उन्हें देख कर सम्मान का भाव नहीं आया। फिर उन्होंने पूछा—"क्या यह पोथी आप दोनों ने मिलकर बनाई है ?"

"नहीं महाराज ! यह हमारे गुरुजी की बनाई हुई है। उनकी ओर से आपको भेंट करने आए हैं।" दोनों चेलों ने कहा।

"क्या विषय है इस पोथी का ?" महाराज ने दूसरा सवाल पूछा।

"कथाएँ हैं महाराज ! देशवासियों के मुँह से सुनी हुई। बड़ी रोचक और ज्ञान से भरपूर।"

गुणिदेव ने पोथी पर का कपड़ा खोलना शुरू किया ही था कि महाराज ने तीसरा सवाल पूछा—"कौन सी भाषा में लिखी है ?"

"पिशाच भाषा में महाराज ! स्याही से नहीं; खून से लिखी हुई।"

गुणिदेव ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया।

यह सुनना था कि राजसभा में खलबली मच गई। पंडितों की टोली नाक-भौं सिकोड़ने लगी। महाराज सातवाहन के मन की उतावली भी खतम हो गई। कुछ क्रोध के साथ उन्होंने कहा—"अब इसे खोलने की जरूरत

नहीं है। भला पिशाची भी कोई ढंग की भाषा है। मालूम होता है, कि आप लोग रास्ता भूलकर इधर आ गये हैं। नहीं तो देव-भाषा के गढ़ इस दरबार में पिशाच-भाषा का क्या काम! और फिर खून से लिखी यह अपवित्र पोथी, विद्वानों के किस काम की। पढ़ना तो दूर रहा, इसे तो छूना भी पाप है।"

गुणिदेव ने अधखोला कपड़ा फिर पोथी पर लपेटा और दोनों गुरुभाई उदास और निराश गुणाढ्य के पास लौट आए।

सारी बात सुनकर गुणाढ्य का मन बहुत दुःखी हुआ।

◇ ◇ ◇

इसके कुछ दिनों बाद एक अनोखी घटना घटी। महाराज की रसोई में माँस पकता था, वह बेस्वाद लगने लगा। एक दिन, दो दिन, तीन दिन—स्वाद बिगड़ता ही गया। महाराज खीझ उठे। रसोई-घर के प्रधान की पेशी हुई।

उसने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज, मैं बेकसूर हूँ। मेरा रत्ती भर भी कसूर नहीं है। शिकारी लोग आजकल जिन जानवरों का शिकार करके लाते हैं, वे बहुत दुबले-पतले होते हैं। यही कारण है कि माँस में स्वाद नहीं होता।"

महाराज ने शिकारियों के प्रधान को बुलाया।

वह भी हाथ जोड़कर कहने लगा—"महाराज! आजकल जंगल भर में कोई जानवर दिखाई ही नहीं देता।"

"तो क्या सारे जानवर जंगलों से भागकर नगरों में आ गए हैं? आखिर तुम कहना क्या चाहते हो?" महाराज ने कड़ककर कहा।

"नहीं महाराज! वे नगरों में नहीं आए। आज बहुत खोज के बाद हमें असली बात का पता चला है। सारे पशु-पक्षी जंगल के बीच, एक जगह इकट्ठे हो गए हैं। वहाँ एक जंगली-सा आदमी है। उसने एक अग्नि-कुंड बनाया है। और उसके पास एक बड़ी पोथी है। वह उस पोथी से

एक-एक पन्ना उठाता है और फिर उसे बड़े मीठे स्वर से गाकर पढ़ता है। पढ़ चुकने के बाद उस पन्ने को अग्नि-कुंड में डाल देता है। ये सब पशु-पक्षी उसी के चारों ओर झुंड के झुंड इकट्ठे हो गए हैं। उन्हें चरने-चुगने की भी सुध नहीं है। वह आदमी जो कुछ गाकर पढ़ता है, उसे सुनते उनका मन भरता ही नहीं। वे कई दिनों से वहीं पर हैं और एक पल के लिए भी कहीं नहीं जाते।"

महाराज को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पूछा—"कौन है, वह आदमी ?"

शिकारियों के प्रधान ने उसका कुछ हुलिया बता दिया। महाराज सुनकर जैसे चौंक पड़े। उन्हें याद आया कि एक बड़ी पोथी भेंट करने के लिए किसी ने मेरे पास भेजी थी। मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। हो सकता है कि इस अपमान के कारण वह उस पोथी को जलाए डाल रहा हो।

उन्होंने झट से घोड़ा तैयार करने की आज्ञा दी और रास्ता दिखाने के लिए शिकारियों के प्रधान को साथ ले वे घोड़ा दौड़ाते वहाँ पहुँचे। उन्हें साफ मालूम हो गया कि यह तो वही पोथी है जिसे मैंने स्वीकार नहीं किया था।

पोथी के थोड़े से पन्ने बच रहे थे। बाकी सब स्वाहा हो चुका था।

महाराज चिल्लाए—"बस करो, कथाकार रुक जाओ। अपनी इस अनमोल पोथी को अग्नि में स्वाहा मत करो।"

यह कहते हुए उन्होंने कथाकार का हाथ पकड़ लिया। फिर हाथ जोड़ बड़ी नम्रता से कहने लगे—"मुझे माफ कर दो। मैंने सचमुच तुम्हारा अपमान किया है। उसके लिए मैं सजा भुगतने को तैयार हूँ। पर इन बाकी बचे पन्नों को तुम मुझे दे दो। बदले में जो चाहोगे, वही दूँगा।"

कथाकार शान्त भाव से बोला—"मुझे आपके इनाम की कतई जरूरत नहीं है। मुझे कथाएँ को सुनाने के लिए ये पशु-पक्षी मिल गये हैं। इन्होंने मेरी कथाओं को भूख-प्यास भूलकर बड़े चाव से सुना है। यह क्या कम इनाम

है ? मेरी कथाएँ अगर काम की हुईं तो वे लोगों से अनजानी नहीं रहेंगी। और अगर बेकार हुईं और लोगों ने उन्हें न अपनाया तो इसमें उनका क्या दोष !"

कथाकार ने पोथी के बचे हुए पन्ने महाराज की भेंट किये। सात लाख श्लोकों में से केवल एक लाख श्लोक बच पाये थे। यह केवल नरवाहनदत्त विद्याधर की कथा थी।

गुणाढ्य ने कहा—"महाराज ! पिशाची भाषा में होने के कारण आप ठीक-ठीक समझ नहीं पायेंगे। इसीलिये मेरे दोनों चेले—गुणिदेव और नंदिदेव—इन्हें आपको समझा देंगे। मेरे इन दोनों चेलों को 'नरवाहनदत्त' की यह कथा सब से ज्यादा पसन्द थी। इसीलिये इन दोनों ने इसको बाद में होम करने की सलाह दी थी।"

सातवाहन ने बड़ी खुशी से, बची हुई पोथी को स्वीकार किया और नंदिदेव और गुणिदेव दोनों को साथ लेकर सुप्रतिष्ठानपुर को लौट पड़ा।

गुणाढ्य के शाप का समय पूरा हो चुका था। उसने मनुष्य शरीर छोड़ दिया और भगवती पार्वती का गण बना।

◇ ◇ ◇

बृहत्कथा की बड़ी महिमा है हमारे संस्कृत के साहित्य में। हमारे साहित्य के प्रायः सभी कथानक उसी के आधार पर लिखे गये हैं।